क्या वाल्मीकि रामायण आदिकाव्य है और वाल्मीकि आदिकवि ?

संस्कृत काव्यजगत में वाल्मीकीय रामायण को 'आदिकाव्य' तथा महर्षि वाल्मीकि को 'आदिकवि' के रूप में स्वीकार किया जाता है। आज के विद्वानों में इसको लेकर मतभेद होसकता है; लेकिन प्राचीन महाकवियों और काव्यशास्त्रियों ने वाल्मीकि को आदिकवि स्वीकार किया है। महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरितम् और आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक में इस तरह के उद्धरण भी प्राप्त होते हैं।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में वह दिन चिरस्मरणीय रहेगा जब तमसा के तट पर महर्षि वाल्मीकि के कण्ठ से यह करुणामयी वाग्धारा फूट पड़ी ?

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"
(1/2/15)

अर्थात् हे निषाद! तुमने काम से मोहित इस क्रौञ्च पक्षी को मारा है, अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो।

जब वाल्मीकि ने अकस्मात् प्रतिभासित और अनुष्टुप् छन्द में परिणत दिव्य वाणी का उच्चारण किया तो वेदों से अन्यत्र छन्दों का नवीन आविर्भाव देख भगवान् ब्रह्मा ने महर्षि वाल्मीकि को कहा -

"ऋषे, प्रबुद्धोऽसि वाग्गात्मनि ब्रह्मणि। तद्ब्रूहि रामचरितम्।
अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु। आद्यः कविरसि।"
(उत्तररामचरितम् /2)

Scanned with CamScanner

अर्थात् हे ऋषि! तुम शब्द-ब्रह्म के विषय में ज्ञानवान् हो गए हो। अतः राम के चरित का वर्णन करो। तुम्हें निरन्तर प्रकाशवाली आर्ष दृष्टि प्रकट हो। तुम आदिकवि हो।

इतना कहने के पश्चात् भगवान् ब्रह्मा अन्तर्धान हो गए। तत्पश्चात् भगवान् वाल्मीकि ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्दब्रह्म के अपूर्व रूपान्तर रामायण नामक इतिहास को बनाया-

"अथ स भगवान्प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मण-
स्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।"

रामायण से पूर्व लौकिक छन्द का मानो आविष्कार ही नहीं हुआ था – 'आम्नाया दन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः'।

महर्षि वाल्मीकि को रामायण के लिए कथावस्तु देवर्षि नारद से प्राप्त हुई। महाकाव्य के आदर्शों को रखकर इसका निर्माण नहीं हुआ है। स्वयं इस काव्य ने ही काव्य के आदर्शों को जन्म दिया है। इसके पहले काव्य और उसके आदर्शों का नाम भी नहीं सुना जाता था। यद्यपि वेदों में भी छन्दोबद्ध मन्त्रों की उपलब्धि होती है, तथापि काव्य के रूप में उनकी प्रसिद्धि नहीं है।

वैदिककाल में 'कवि' शब्द त्रिकालदर्शी, ज्ञानी एवं सर्वज्ञ आदि अर्थों में प्रचलित था। आज भी ये अर्थ अग्राह्य नहीं हुए हैं, तथापि रचना-वैशिष्ट्य के कारण जो कवि और काव्य का विशेष अर्थ हृदयङ्गम होता है, वह वाल्मीकि रामायण के बाद ही प्रसिद्ध हुआ है।

ग्रन्थ प्रणयन के पूर्व महर्षि वाल्मीकि ने जो लक्ष्य निर्धारित किया, वे थे- काव्य अमर हो, जन-जीवन से साक्षात् सम्बद्ध हो, चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन हो; भाव, भाषा, छन्द, अलंकार की दृष्टि से नवीनतम हो; लोक-मनोरञ्जन के साथ ही लोक-परलोक दोनों का साधक हो। जैसे ही उनकी काव्य निर्झरणी प्रवाहित हुई, लौकिक काव्य परम्परा प्रादुर्भूत हुई, जो प्रतिदिन पुष्पित एवं पल्लवित होती हुई आज विशाल साहित्य के रूप में समृद्ध है। इस क्रान्तिकारी नवीन धारा के प्रवर्तन के कारण

रामायण

वाल्मीकि को आदिकवि कहा गया। उनकी अमूल्य कृति, लौकिक काव्यमाला का प्रथम गुच्छ है। संस्कृत काव्य परम्परा का यही उदय है। महाकाव्य की भाविनी परम्परा का यही मूलस्रोत है।

कवि के सच्चे रूप की कल्पना हमने वाल्मीकि से सीखी है और महाकाव्य के महत्त्व को हमने रामायण से ग्रहण किया है। यदि वाल्मीकि न होते तो हम कवि के वास्तविक स्वरूप तथा अभिराम आदर्श को कहाँ से सीखते? वस्तुतः कवि और काव्य के विशुद्ध रूप की कसौटी है- आदिकवि का परमपावन, मननीय तथा भावनीय आदिकाव्य रामायण।

कवि का पद ऋषि के समान है। ऋषि का भी अर्थ है - द्रष्टा। वस्तुओं के विचित्र भाव, धर्म तथा तत्त्व को भलीभाँति अवगत करनेवाला व्यक्ति ही 'ऋषि' के महनीय पद का वाच्य है। 'कवि' का भी अर्थ है - क्रान्तदर्शी - 'कवयः क्रान्तदर्शिनः'। अर्थात् नेत्रों के व्यापार से दूर रहने वाले अतीत एवं भविष्य के पदार्थों को यथार्थरूप से देखने वाला पुण्यात्मा पुरुष। परन्तु में दोनों में थोड़ा अन्तर है। वस्तु-तत्त्व के दर्शन होने से ऋषित्व की प्राप्ति हो जाती है; परन्तु जबतक वह अपने अनुभूत वस्तु तत्त्व को शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं करता, तबतक वह 'कवि' नहीं कहला सकता। 'कवि' की कल्पना में 'दर्शन' के साथ 'वर्णना' का भी मनोरम सामञ्जस्य है और इस कल्पना के जनक स्वयं महर्षि वाल्मीकि ही हैं। उन्हें वस्तुओं का निर्मल दर्शन नित्यरूप से था; परन्तु जबतक 'वर्णना' का उदय नहीं हुआ, तबतक उनकी कविता का प्राकट्य नहीं हुआ। कवि के यथार्थ रूप को वाल्मीकि के दृष्टान्त के द्वारा प्रसिद्ध समालोचक शिरोमणि भट्ट तौत ने इस पद्य में कितनी सुन्दरता से समझाया है -

"दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः।
तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनेः।
नोदिता कविता लोके यावन्नाता न वर्णना॥"

संस्कृत काव्यधारा की दिशा तो उसी अवसर पर निर्दिष्ट हो गई जब प्रेम परायण सहचर के आकस्मिक

वियोग से संतप्त क्रौञ्ची के करुण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक रूप में छलक पड़ा था। काव्य का जीवन रस है, काव्य का आत्मा रस है - इसे साहित्य संसार ने तभी सीख लिया, जब आदिकवि की आदिकविता के रसामृत का उसने पान किया; बारम्बार प्रीयमान तथा नितान्त विस्मित शिष्यों ने आश्चर्यभरे शब्दों में इस रहस्यभूत तत्त्व को पहचाना—

"समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः॥"
(1/2/40)

महाकवि कालिदास ने भी इसी तथ्य की अभिव्यक्ति की है—

"तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥"
(रघुवंशम् 14/70)

इन्हीं सूत्रों को पकड़कर आनन्दवर्धन ने स्पष्ट शब्दों में 'प्रतीयमान' अर्थ के सामान्यरूपेण काव्य में मुख्य होने पर भी रस को ही काव्य का आत्मा स्वीकार किया है—

"काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥"
(ध्वन्यालोक 1/5)

अर्थात 'वही अर्थ काव्य का आत्मा है' - इसमें यही प्रमाण है कि प्राचीनकाल में क्रौञ्च के जोड़े के परस्पर वियोग से उत्पन्न हुआ आदिकवि का शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया।

इसको स्पष्ट करते हुए ध्वन्यालोककार कहते हैं-

"विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चचारुणः काव्यस्य स एवार्थः सारभूतः। तथा चादिकवेः वाल्मीकेः निहतसहचरविरहकातर-क्रौञ्चाक्रन्दनजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः।"

अर्थात

विविध वाच्यवाचकरचनाप्रपञ्च से सुन्दरता को प्राप्त काव्यका वही अर्थ (प्रतीयमान) सारभूत है। उसमें यह प्रमाण है कि मारे हुए सहचर के वियोग से कातर क्रौञ्ची के आक्रन्द से उत्पन्न हुआ आदि वाल्मीकि का शोक ही श्लोकरूप में परिणत हो गया।

Scanned with CamScanner